



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2020; 6(8): 397-399
www.allresearchjournal.com
 Received: 21-06-2020
 Accepted: 22-07-2020

शत्रुघ्न कुमार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, ल. न.
 मि. वि., दरभंगा, बिहार, भारत

सामाजिक न्याय के पृष्ठभूमि में आरक्षण का महत्त्व

शत्रुघ्न कुमार

सारांश

एक स्वस्थ, समर्थ और प्रगतिशील राष्ट्र की नींव सामाजिक समरसता के मूलभूत सिद्धांत पर निर्भर करती है, जिसके मूल में 'सामाजिक न्याय' निहित होता है। 'आरक्षण व्यवस्था' 'सामाजिक न्याय' को शक्ति एवं गति देने का साधन है, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र के साथ राजनीतिक लोकतंत्र मजबूत बनता है। किंतु जब यह राजनीतिक तुष्टीकरण का हथियार बन जाता है तो इससे राष्ट्र की एकता एवं समरसता पर ही खतरा उत्पन्न हो जाता है। भारतवर्ष इसका एक उदाहरण है। अतः यह समयबद्ध और वैकल्पिक साधन के रूप में ही सर्वाधिक उपयोगी हो सकता है।

प्रस्तावना

आरक्षण-व्यवस्था सामाजिक न्याय को शक्ति देने वाला एक महत्वपूर्ण औजार है, जिससे सामाजिक समरसता के भाव का विकास होता है। फलतः एक सशक्त लोकतंत्र की नींव पड़ती है। भारतवर्ष जैसे विकासशील देश में जहाँ आबादी बड़ी है और सरकारी नौकरियाँ सीमित हैं, वहाँ यह सामाजिक न्याय की एकमात्र धूरी नहीं हो सकती है। यह एक समयबद्ध, तुष्टीकरण रहित वैकल्पिक साधन के रूप में ही प्रतिष्ठित हो सकती है।

'सामाजिक न्याय' वस्तुतः सामाजिक उत्थान की मूलभूत अवधारणा है, जो सामाजिक विषमताओं को समाप्तकर सामाजिक समरसता के सृजन का भाव अभिव्यक्त करती है। एक स्वस्थ, समर्थ और प्रगतिशील राष्ट्र की नींव समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के जिन महान आदर्शों पर अवलंबित होता है, उसके केंद्र में 'सामाजिक न्याय' निहित होता है। 'समाज-विज्ञान विश्वकोश' के अनुसार "एक विचार के रूप में सामाजिक न्याय की बुनियाद सभी मनुष्यों के समान मानने के आग्रह पर आधारित होता है। इसके मुताबिक किसी के साथ सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। हर किसी के पास इतने न्यूनतम संसाधन होने चाहिए कि वे उत्तम जीवन की अपनी संकल्पना को धरती पर उतार पाएँ।" ¹

सचमुच 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा काफी व्यापक है, जिसके मूल में समग्र सामाजिक कल्याण की विचारधारा विद्यमान है।

एल. टी. हॉवहाउस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Elements Of Social Justice" में 'सामाजिक न्याय' के अंतर्गत कई तत्त्वों की चर्चा की है, जिसमें एक मुख्य तत्त्व के रूप में पिछड़े और कमजोर वर्गों का शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास करना भी है। इस कार्य के लिए आरक्षण की व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण साधन दिखाई देता है।

किसी भी राष्ट्र में वर्षों के शोषण, अत्याचार, गुलामी आदि से दमित कुछ ऐसे समुदाय-विशेष होते हैं, जिनमें समय के साथ-साथ अपेक्षित सकारात्मक परिवर्तन नहीं दिखायी देता है। ये समुदाय-विशेष खुद को चक्रीकृत शोषण-व्यवस्था का स्थायी अंग समझने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के द्वारा मौलिक अधिकारों के साथ-साथ अनेक सांविधानिक शक्तियों से सुसज्जित होने के बावजूद ये समुदाय-विशेष इससे सम्यक् रूप से लाभान्वित नहीं हो पाते हैं। फलतः उनके मध्य सामाजिक विषमताओं की दीवारें दिनानुदिन बड़ी होती चली जाती है। इस कारण इन समुदाय-विशेष को 'आरक्षण' 'जैसी बैसाखी की आवश्यकता पड़ती है, ताकि उसके सहारे वे सामाजिक विकास की मुख्यधारा से जुड़ सकें। इस दृष्टि से आरक्षण-व्यवस्था 'सामाजिक न्याय' की सिद्धि का एक महत्त्वपूर्ण साधन प्रतीत होता है। समाज विज्ञान विश्वकोश के अनुसार – "किसी भी राष्ट्रीय सरकार या राष्ट्रीय अभिजनों के हाथ में आरक्षण की नीति एक ऐसा औजार है, जिसके जरिये वे अपने समाज की लोकतांत्रिक पुनर्रचना कर सकते हैं। आरक्षण की दीर्घकालीन परियोजना के माध्यम से न केवल सामाजिक गैर बराबरी घटाई जाती जा सकती है, बल्कि समाज को जातिगत और जातीय टकराव से भी बचाया जा सकता है। भारतीय समाज और लोकतंत्र का संबंध इसका उदाहरण है।" ²

Corresponding Author:

शत्रुघ्न कुमार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, ल. न.
 मि. वि., दरभंगा, बिहार, भारत

भारतवर्ष में आरक्षण—व्यवस्था की संभावना संविधान निर्माताओं ने बहुत सोच-समझकर निर्धारित की थी। बाबासाहेब आंबेडकर ने सामाजिक लोकतंत्र की परिकल्पना को साकार करने की बात कही है। उनके अनुसार –

“यदि हम सामाजिक जीवन में लोकतंत्र की स्थापना नहीं कर पाते तो राजनीतिक जीवन में लोकतंत्र ज्यादा दिनों तक नहीं टिका रह सकता है।” उनका यह विचार ब्रिटिश विचारक ‘लास्की’ के समान है, जो मानते हैं कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के अभाव में राजनीतिक लोकतंत्र मृग मरीचिका मात्र है। सामाजिक लोकतंत्र की सिद्धि सामाजिक न्याय के बिना असंभव है। फलतः ‘आरक्षण की व्यवस्था’ को सीमित समयावधि के लिए स्वीकार कर सामाजिक लोकतंत्र को भारतवर्ष में बढ़ाने का निर्णय लिया गया। प्रारंभ में 26 जनवरी 1950 से केवल 10 वर्षों के लिए आरक्षण को अपनाया गया, जिससे ‘वंचित वर्ग’ का समुचित उत्थान हो सके। कालांतर में यह व्यवस्था राजनीतिक तुष्टीकरण का हथियार बन गया और इसे लगातार आगे बढ़ाया जाता रहा। मंडल कमीशन की सिफारिश पर अति पिछड़े वर्गों के लिए 27^b आरक्षण—व्यवस्था वी. पी. सिंह की सरकार ने अगस्त 1990 में लागू की। बाद में सवर्णों के लिए भी आर्थिक आधार पर आरक्षण की माँग उठी। 2019 में मोदी सरकार के द्वारा 124 वें संविधान संशोधन के रूप में सवर्णों को आर्थिक आधार पर 10^b आरक्षण दिया गया।

यह सच है कि भारतवर्ष में आरक्षण व्यवस्था कुछ मायनों में सामाजिक विकास के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में ‘सामाजिक न्याय’ को बढ़ावा दिया है। इसने पिछड़ी जातियों में वर्गगत चेतना का विकास करवा कर वर्चस्ववादी सोच को चुनौती देने की शक्ति का संचार किया है। हाशिये पर रहे वर्गों में आर्थिक व सामाजिक सुदृढीकरण को बल दिया है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को काफी ऊर्जा मिली और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मजबूत बना। इसने सामाजिक चिंतन का स्तर बढ़ाया, जिससे ‘लोहिया जी’ जैसे विद्वानों ने खुलकर इसका साथ दिया। किंतु दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में इसके नाम पर राजनीतिक तुष्टीकरण काफी फला-फूला, जिसने इसकी प्रासंगिकता को ही सीमित कर दिया है। आजादी के 71 वर्षों के बावजूद आरक्षण के नाम पर देश में राजनीतिक षड्यंत्रों का दौर चल रहा है। गुजरात में पटेल आरक्षण का तांडव, महाराष्ट्र में मराठा आरक्षण की हुंकार तो हरियाणा में जाट आरक्षण की वीभत्स राजनीति हमारे समक्ष चुनौती बन रही है। क्या कारण है कि ये वर्ग आज खुद को पिछड़ा घोषित करवाने के लिए लालायित हैं? क्या कारण है कि आज भी आरक्षण के लिए संविधान-संशोधन की आवश्यकता पड़ रही है? स्पष्टतः यह राजनीतिक तुष्टीकरण से प्रेरित है, जो समयबद्ध ‘आरक्षण—व्यवस्था’ की संविधान-निर्माताओं की दूरदृष्टि को तिरस्कृत करती है। इस कारण आज इस पूरी व्यवस्था की वैज्ञानिक और तथ्यप्रद समीक्षा अनिवार्य है।

आज ‘आरक्षण—व्यवस्था’ में कुछ बुनियादी परिवर्तन नितांत आवश्यक है, जो इसके ध्येय को साकार बना सके। इन परिवर्तनों को हम निम्न तत्त्व के रूप में निरूपित कर सकते हैं:—

आर्थिक आधार पर आरक्षण

भारतवर्ष में आजादी से लेकर अब तक जिन समुदायों ने आरक्षण—व्यवस्था का भरपूर लाभ उठाया है, उसका एक ईमानदार चेहरा समाज के समक्ष आना चाहिए। आर्थिक पिछड़ेपन को मानक बनाकर सभी वर्गों की व्यवहारिक-स्थिति की समीक्षा होनी चाहिए ताकि सबसे आर्थिक रूप से पिछड़े समुदाय की पहचान हो सके और उसे ‘आरक्षण व्यवस्था’ से जोड़ा जा सके और जिन वर्गों ने अपनी स्थिति सशक्त बना ली है उन्हें इससे अलग किया जा सके। इस आधार पर ‘आरक्षण व्यवस्था’ को

चलाना होगा ताकि सबसे कमजोर समूह लाभान्वित हो सके, जिससे सामाजिक न्याय की स्थिति सुदृढ हो सकेगी।

समयबद्ध आरक्षण की व्यवस्था

आरक्षण की व्यवस्था वैकल्पिक व्यवस्था हो न कि स्थायी। इसे एक तय समयावधि के लिए ही लागू करना चाहिए। एक पिछड़े वर्ग के लिए एक निश्चित समयावधि निर्धारित हो ताकि वह वर्ग उस अवधि में खुद को मजबूत बना सके। इससे सामाजिक सक्रियता के क्षरण की आशंका भी धूमिल होगी और सामाजिक समरसता का विकास हो सकेगा।

सामाजिक न्याय—केंद्र की स्थापना

हर जिले में एक सामाजिक न्याय—केंद्र की व्यवस्था की जाए जो उस जिले का सामाजिक प्रोफाइल बनाएगा और समय-समय पर उस जिले के पिछड़े समुदाय की स्थिति पर रिपोर्ट बनाकर सार्वजनिक करेगा। फलतः उसकी सम्यक् वस्तुस्थिति का आलोचनात्मक विचार-विमर्श हो पायेगा। इससे आरक्षण का लाभ सही समय पर सही लोगों तक पहुंच पाएगा, जिससे इसका ध्येय साकार हो जाएगा।

व्यापार और बाजारवाद का सम्यक् फैलाव

भूमंडलीकरण के वर्तमान परिवेश में व्यापार—वाणिज्य का तकनीक के साथ फैलाव होने से आर्थिक संसाधन बहुसंख्यक पिछड़े वर्गों को संपन्न बनाती है। इससे पिछड़े वर्ग आर्थिक शक्ति पाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति देते हैं जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था सुदृढ हो पाती है। इससे बाजारवाद और उपभोक्ता वर्गों का विकास होता है। सी.के. प्रहलाद ने अपनी पुस्तक “फार्च्यून एट द बॉटम ऑफ पिरैमिड” में बताते हैं कि बाजार सुचारु ढंग से तभी रह पाएगा जब सबसे अंतिम पायदान के व्यक्ति को बाजार का हिस्सा बनाया जाए।

स्पष्टतः बाजारवाद के विकास का ध्येय अंतिम सामाजिक पायदान के पिछड़े वर्गों का उन्नयन करना भी है, जो ‘सामाजिक न्याय’ को सुदृढ बनाता है। इससे आरक्षण व्यवस्था की उपयोगिता को फलीभूत करने में मदद मिल सकती है।

जनभागीदारी का प्रसार

राष्ट्रीय स्तर की योजनाएँ हों या ग्राम अथवा समाज स्तरीय योजनाएँ, जनभागीदारी के विकास होने से सामाजिक लोकतंत्र का विकास होता है, जो ‘सामाजिक न्याय’ की अवधारणा को मजबूत बनाता है। इसके प्रसार से ‘सामाजिक न्याय’ का प्रचार-प्रसार होगा, जिससे ‘आरक्षण व्यवस्था’ का औचित्य दिनानुदिन सीमित होता चला जाएगा, यही इसकी सार्थकता होगी।

इसके अलावा कौशलपूर्ण शिक्षा का विकास, उद्यमशीलता के लिए उचित वातावरण का विकास, जातिवादी राजनीति का विनाश आदि अनेक ऐसे साधन हैं जो सामाजिक एकरूपता को बढ़ावा देते हैं, जिससे ‘आरक्षण व्यवस्था’ का औचित्य समयबद्ध रूप में सकारात्मकता ग्रहण कर सकता है। फलतः यह एक सर्वसमावेशी समाज के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दे सकेगा।

भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ सरकारी नौकरियाँ सीमित हैं और आबादी बहुत बड़ी है, वहाँ ‘आरक्षण व्यवस्था’ ‘सामाजिक न्याय’ की एकमात्र धुरी नहीं हो सकती है। यह वैकल्पिक और समयबद्ध साधन के रूप में ही उपयोगी बन सकती है। यही इसकी प्रासंगिकता भी है। यदि हमें एक नये, सशक्त व दूरगामी रूप से समर्थ भारत का निर्माण करना हो तो ‘आरक्षण व्यवस्था’ की आवश्यकता को सीमित करना होगा; तभी एक स्वस्थ एवं सुयोग्य राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा को हम जमीनी हकीकत के रूप में साकार कर पाएँगे।

निष्कर्ष

आरक्षण व्यवस्था सामाजिक न्याय के रूप में सामाजिक समरसता को सृजन करने वाला एक वैकल्पिक एवं समयबद्ध व्यवस्था है। एक स्वस्थ एवं सुयोग्य राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा को चरितार्थ करने के लिए आरक्षण को समयबद्ध एवं राजनीतिक तुष्टीकरण मुक्त बनना होगा तभी यह सामाजिक न्याय के साथ-साथ लोकतांत्रिक मूल्यों की सृष्टि करने में समर्थ हो सकता है।

संदर्भ

1. समाज-विज्ञान विश्वकोश, खंड-6, सं. अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-2016, पृष्ठ-2036
2. समाज-विज्ञान विश्वकोश, खंड-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ-164